

[श्री ओंकारनाथ मालपानी लॉ कॉलेज, संगमनेर के नामकरण शुभारंभ पर दिनांक 11.04.2007 में दिया गया न्यायमूर्ति श्री रमेशचन्द्र लाहोटी, पूर्व प्रधान न्यायाधीश, भारत का वक्तव्य]

डॉ. श. ना. नवलगुंदकरजी, सहकारमहर्षी श्री भाऊसाहेब थोरात, कार्याध्यक्ष श्री संजयजी मालपाणी, डॉ. सुधीर, डॉ. कडूजी, सौ. दुर्गाताई तांबे, मंच पर आसीन अतिविशिष्ट महानुभावो, ज्युडिशियल ऑफिसर्स, दिल्ली से आए हुए श्री श्यामजी जाजू, श्री सुशीलजी, नासिक से आए हुए मालपाणी परिवार के सदस्यगण, माताएं, बहने और देवियों संध्याकाल की नमस्कार। मराठी बहुत सुंदर भाषा है किन्तु मुझे दुःख है कि यह भाषा मैं बोल नहीं सकता। इसलिए मैं हिन्दी में बोलने की अनुमति चाहूंगा।

इस विद्यालय में आकर मुझे बहुत खुशी हो रही है। वैसे तो मैं प्रत्येक विद्यालय को माता सरस्वती का मंदिर मानता हूं और इसी भाव से विद्यालय में जाता हूं तो माता सरस्वती का अहसान मानता हूं, वंदन करता हूं और आज का हमारा कार्यक्रम तो माता सरस्वती के सामने दीप जलाकर और माल्यार्पण का समर्पण करके ही शुरू हुआ है। विद्यालय इसलिए माता सरस्वती का मंदिर होता है कि यहां विद्या और बुद्धि का विकास होता, ज्ञान का अर्जन होता है, ज्ञान का सृजन होता है और ज्ञान का वितरण होता है। संसार की जितनी सम्पदाएं और शक्तियां हैं वे बांटने से और खर्च करने से घटती हैं किन्तु विद्या ऐसी सम्पदा है कि जितनी बांटी जाए उतनी बढ़ती है। ये विद्या की विशेषता है। और मेरे लिए तो आज का दिन बिल्कुल ऐसा है जैसे मैंने कोई तीर्थ यात्रा की हो। आज सुबह आचार्य श्री किशोरजी व्यास का दर्शन हुआ। उनका सत्संग मिला और कांचीकोठी पीठ के आचार्य श्रीशंकराचार्यजी का दर्शन किया। उनका आशीर्वाद मिला इसलिए मेरी यह संगमनेर की यात्रा तीर्थ यात्रा से कम नहीं है। तीर्थ यात्रा में क्या होता है। संतो का दर्शन ही तो होता है। पवित्र भूमि का स्पर्श होता है और यही आज के दिन में मैंने भी किया है।

आज जिस लॉ कॉलेज के भवन की शुरुआत हुई है और जिन महापुरुष के नाम पर इसका नामकरण हुआ है मुझे उनके संबंध में कुछ जानकारी मिली, कुछ मैंने सुनी।

ऐसी व्यक्तित्व को देखकर मुझे बहुत खुशी होती है। भगवान की सब पर कृपा रहती है। किसी को रूपया देता है किसी को बुद्धि देता है, किसी को धन सम्पत्ति देता है और उसकी विशेष कृपा हो तो उसे ज्यादा भी देता है। पर प्रश्न यह उठता है कि कौन इसका कैसे उपयोग करता है। मुझे दो बातें बहुत अच्छी लगीं। श्री ओंकारनाथजी मालपाणी ने इस संस्था के लिए अपने तन, मन और धन का सहयोग दिया। और ये सहयोग पूरी तरह विनम्रता के भाव के साथ। जिस व्यक्ति के पास कुछ होता है और थोड़ा सा भी चंदा या दान यदि देता है तो उसकी रसीद लेता है और चाहता है कि उसकी चर्चा की जाए कि मैंने इतना दान दिया है। इस संस्था में उन्होंने जो भी सहयोग दिया वह बहुत विनम्रता के भाव के साथ किया। मैं जब ऐसे महापुरुषों को देखता हूं तो उनकी स्मृति में मुझे एक प्रसंग याद आता है। आपके साथ इसे बांटना चाहता हूं। आपने अब्दुल रहीम खानखाना का नाम तो सुना ही होगा। सन्त हुए हैं, कवि हुए हैं। संपन्न भी थे। और जितना उनके पास था उसे खूब बांटते थे, खूब दान देते थे। पर जब वे दान देने बैठते थे तो उनकी बैठने की स्थिति कुछ ऐसी होती थी कि अपना हाथ आगे बढ़ाकर दान देते थे और अपनी आंखें झुका लिया करते थे। ये देखते नहीं थे कि दान कौन ले रहा है। किसी ने उनसे एक प्रश्न पूछा कि—

सीखी कहां रहीम जू ऐसी देनी देन, ज्यों—ज्यों कर ऊंचे उठे त्यों—त्यों नीचे नैन।

जैसे—जैसे दान देने वाला हाथ ऊंचा उठने लगता है वैसे—वैसे उनकी आंखें नीची होती जाती हैं। रहीमदासजी ने इसका जो उत्तर दिया वह हम सबके लिए एक आदर्श है और अपने जीवन में सीखने लायक है। और जैसा मनोभाव श्री ओंकारनाथजी मालपाणी का है, जैसा उनके परिवार का है वैसा भाव हम सब का होना चाहिए। अब्दुल रहीम खानखाना ने इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दिया कि—

देने वाला और है, देता है दिन रैन, लोग भ्रम मेरो करें ताते नीचे नैन।

देने वाला कोई और है। वह दिन रात देता है। पर हां, उसकी मेरे ऊपर ऐसी कृपा है कि देने का माध्यम उसने मुझे बना दिया पर लोगों को यह भ्रम होता है कि मैं दान दे रहा

हूँ। इसलिए लज्जा के भाव के कारण मेरी आंखें झुकी रहती हैं। इस भाव से जो दान देते हैं उनके दान की महिमा बढ़ जाती है। एक विशेष बात और है कि श्री ओंकारनाथजी मालपाणी ने अपनी विरासत अपने सामने बांट दी। उन्होंने अपने परिवार के सदस्यों को इस योग्य बनाया कि जिस काम की शुरुआत उन्होंने की है वह काम आगे भी चलता रहे और ऐसा न हो कि मेरे पीछे कोई यह काम करे न करे इसलिए इस बात का भरोसा कर लिया कि दूसरी पीढ़ी के लोग उनके सामने इस ज़िम्मेदारी को उठा लें। मेरा राजेशजी से, संजयजी से, उनके परिवार के सदस्यों से, आदरणीय बाईजी से कोई पुराना परिचय नहीं है। पिछले दो दिन में और जब संजयजी एक बार दिल्ली आए थे तब मेरा उनसे परिचय हुआ। मुझे यह देखकर बहुत अच्छा लगता है कि परिवार का यह आदर्श चल रहा है और आगे भी चलता रहेगा।

मैंने अभी बाहर दो पंक्तियां पढ़ीं जो ओंकारनाथ जी के चित्र के नीचे लिखी हुई हैं मुझे बहुत अच्छी लगी। मैंने संजयजी से अनुरोध किया कि वे मुझे ये पंक्तियां लिखकर दे दें। उसमें लिखा है कि— 'निर्माणों के पावन युग में हम चरित्र निर्माण न भूलें, स्वार्थ साधना की आंधी में वसुधा का कल्याण न भूलें।' सकारात्मक सोचा होना अति आवश्यक है। हमारा बहुत सा समय दूसरे की आलोचना करने और उनकी कमियां निकालने में व्यर्थ जाता है। उतना समय यदि हम सकारात्मक सोच में लगाएं तो हमारा कल्याण हो सकता है। इससे हमें संदेश यह मिलता है कि इस संसार की हम कितनी भी आलोचना क्यों न करें पर मेरी दृष्टि में यह एक पावन युग है। इसलिए पावन युग है कि यह यह पावन युग हमें निर्माण करने का अवसर देता है। यदि आज संसार में वो स्थिति नहीं होती जो हम देख रहे हैं तो निर्माण करके समाज की सेवा करने का अवसर हमें मिल ही नहीं पाता। निर्माण तो हम कर ही रहे हैं पर इस निर्माण का पावन कार्य संपादन करते हुए भी चरित्र निर्माण को हम न भूलें। ये सबसे पहली बात है और स्वार्थ साधना की आंधी में वसुधा का कल्याण न भूलें।

मैंने संजयजी के संबंध में थोड़ी सी जानकारी ली। मुझे मालूम हुआ कि शिक्षा तो उन्होंने ली है पर बाल साइकोलोजी और प्रबंधन ये उनका विशेष विषय रहा। और मैंने देखा कि न केवल वे यहां काम करते हैं बल्कि जब मौका मिलता है बाहर भी जाते हैं,

शिविर लगाते हैं, बच्चों को, बच्चों के शिक्षकों को बताते हैं कि चरित्र निर्माण का क्या महत्त्व है। चरित्र निर्माण कैसे किया जाता है।

सुमित्रानन्दनजी पंत बहुत सुप्रसिद्ध कवि हुए हैं। हिन्दी के छात्र और शिक्षक उन्हें जानते हैं। उन्होंने एक रचना लिखी है उसकी दो पंक्तियां हैं कि— 'प्रखर बुद्धि से भले सभ्यता हो नवनिर्मित, संस्कृति के सृजन हेतु बस हृदय चाहिए।' यदि किसी के बुद्धि प्रखर हो तो सभ्यता का निर्माण हो सकता है। किन्तु इससे काम नहीं चलेगा कुछ और चाहिए। संस्कृति का निर्माण हृदय से होता है और सभ्यता का निर्माण प्रखर बुद्धि से होता है। और यदि सभ्यता और संस्कृति दोनों का निर्माण करना है तो दोनों का संयोग होना आवश्यक है। मैंने प्रखर बुद्धि के साथ हृदय के इस संयोग को संजयजी मालपाणी में देखा है इसलिए मैं उन्हें साधुवाद देना चाहता हूं और अपनी शुभकामना के रूप में यह संदेश देना चाहता हूं कि अपने पूज्य पिताजी के बताए हुए जिस मार्ग पर आप और आपका परिवार चल रहा है उस पर चलते रहिए और अपनी गति और बढ़ाइए ताकि आप कम समय में और ज्यादा अधिक दूरी तक चल सकें।

जब संजयजी दिल्ली आए थे तो इस विद्यालय से संबंधित साहित्य मैं पढ़ रहा था। दो बातें इसमें मुझे बहुत अच्छी लगीं। एक बात तो यह कि इस विद्यालय में बालकों की जो शिक्षा होती है उसमें एक कक्षा में अधिक से अधिक 30 विद्यार्थियों को प्रवेश दिया जाता है.....

उसके बाद मैं गुना छोड़ा, ग्वालियर आया, जबलपुर गया और अब दिल्ली आ गया हूं। बड़े शहरों में देखता हूं उनकी बड़ी बातें हैं। उनकी चर्चा करने का आज समय नहीं है उनको देखकर निराशा भी होती है। किन्तु अपने छोटे शहर की एक छोटी संस्था की बात करना चाहता हूं। शिक्षा क्या होनी चाहिए। शिक्षा कैसे लेनी और देनी चाहिए हमारे यहां एक विद्यालय खुला था उसका नाम था सरस्वती विद्यालय। वहां एक वाचनालय पुस्तकालय के आंगन में एक कमरे में ये सरस्वती विद्यालय खुला था और उसमें 30 विद्यार्थियों को प्रवेश दिया गया था। उस विद्यालय के जो आचार्य थे उनसे मैंने एक बार भेंट करके कहा कि मेरे नगर में इतने बालक हैं सबको अच्छी शिक्षा चाहिए और आप

संस्कारवान शिक्षा देते हैं तो आप इस कक्षा के विद्यार्थियों की संख्या बढ़ाते क्यों नहीं और 30 से अधिक विद्यार्थियों को क्यों नहीं प्रवेश देते। उन्होंने मुझे इसका उत्तर देते हुए कहा कि— विद्यार्थियों की संख्या एक कक्षा में 30 तक सीमित रखने का हमारा एक उद्देश्य है और यह उद्देश्य यह है कि महीने में 30 तीन होते हैं और कक्षा के आचार्य होने के नाते मैं प्रतिदिन एक बालक के माता-पिता से भेंट करता हूं और तीस तीन में तीस बालकों के माता-पिता से मेरी भेंट होती है। ये मेरा क्रम एक महीने तक चलता है। मेरा विद्यार्थियों और उनके माता-पिता से निकट का संपर्क रहता है। और विद्यालय में विद्यार्थी क्या करता है इसकी जानकारी मैं बालक के माता-पिता को देता हूं। और विद्यालय में आने से पहले और विद्यालय से जाने के बाद यह बालक घर पर क्या करता है तथा माता-पिता बालक में कितनी रुचि लेते हैं इसकी जानकारी मैं उनसे भेंट करके लेता हूं। चरित्र का निर्माण तब तक संभव नहीं है जब तक कि बालक और गुरु के बीच इतनी निकटता का संबंध स्थापित न हो कि शिक्षा देने वाला शिक्षक परिवार का सदस्य ही बन जाए। और ऐसे शिक्षक से जो विद्यार्थी शिक्षा लेता है वह अपने जीवन में कभी भूलता नहीं है कि मैंने किससे शिक्षा ली है और याद करता है कि मैंने न केवल इससे ज्ञान का अर्जन किया है बल्कि इस शिक्षक ने मेरे चरित्र के निर्माण में भी अपना योगदान दिया है। इसलिए न केवल शिक्षक के भाव से बल्कि सच्चे गुरु के भाव से भी वह अपने शिक्षक का जीवन भर स्मरण करता है और जब स्मरण करता है तो श्रद्धा के भाव से नमन भी करता है। शिक्षक और शिक्षार्थी में यह संबंध होना चाहिए।

दूसरी बात जो मैंने इस विद्यालय के साहित्य में देखी है। इसमें संस्कार की शिक्षा देने का प्रावधान है। बालक के चरित्र का निर्माण। आज मैंने बच्चों का विद्यालय देखा और मैंने देखा कि किस प्रकार भगवान कृष्ण के जीवन चरित्र को आधार बना कर उस विद्यालय में शिक्षा दी जाती है। यूं तो भगवान श्रीकृष्ण की वन्दना करते हुए कहा जाता है कि —*वन्दे कृष्णम् जगतगुरुम्*। भगवान श्रीकृष्ण जगत के गुरु हैं किन्तु इस विद्यालय में बालकों को यह बताया जाता है कि भगवान श्रीकृष्ण केवल किसी श्लोक में लिखे हुए गुरु नहीं हैं वो वास्तव में गुरु हैं और उनके जीवन में शिक्षा लेने के लिए बहुत कुछ है ये मैंने आज इस विद्यालय के प्रांगण में स्वयं देखा है। और इस विद्यालय में जिन्हें शिक्षा

लेने का अवसर मिल रहा है तो निःसन्देह इस देश के निर्माण में बहुत बड़ा योगदान इस विद्यालय से निकलने वाले बालक देने वाले हैं इसकी मुझे आश्वस्ति आज मुझे इस विद्यालय को देखकर हुई।

संस्कार की शिक्षा। मैंने जब इस विद्यालय में प्रवेश किया तो मुझे इसके प्रवेश द्वार पर एक मूर्ति दिखी। अर्धनिर्मित मूर्ति है। उस मूर्ति का आशय यह है कि एक बालक उस मूर्ति में बैठकर स्वयं उस मूर्ति की रचना कर रहा है। अर्थात् स्वयं ही अपने चरित्र निर्माण कर रहा है और स्वयं ही ज्ञान का अर्जन कर रहा है। हमारी शिक्षा पद्धति जो हमारे अपने देश की है और पश्चिम शिक्षा पद्धति में यह मूलभूत अन्तर है कि पश्चिम यह मानकर चलता है कि विद्यार्थी अबोध होता है और इसके मस्तिष्क में ज्ञान को भरने की आवश्यकता होती है। किन्तु हमारे भारत का दर्शनशास्त्र और हमारा भारतीय चिन्तन जिसे इस विद्यालय ने स्वीकार किया है वह यह कहता है कि प्रत्येक बालक में जन्मजात ज्ञान होता है, प्रतिभा होती है। शिक्षक या गुरु का कर्तव्य केवल इतना है कि इसके व्यक्तित्व में जो अन्तर्निहित ज्ञान है इसको उभार कर बाहर लाये और विकसित करे।

माइकल एंजिलो का नाम आप सबने सुना होगा विश्व प्रसिद्ध मूर्तिकार। उसकी बनाई हुई मूर्तियां विलक्षण होती हैं। जैसी मूर्ति वह बनाता है वैसी मूर्ति विश्व में कोई और दूसरा बनाने वाला हुआ ही नहीं। उससे एक पत्रकार ने एक प्रश्न पूछा कि— आप जिस पत्थर को उठा कर लाते हैं क्या आपको इस पत्थर की पहचान होती है कि इस पत्थर में से इतनी सुंदर मूर्ति बनेगी। आप कैसे इतनी अच्छी मूर्तियां बनाते हैं। माइकल एंजिलो ने कहा कि— मित्र, मैं कोई मूर्ति नहीं बनाता। और तुम्हारी मान्यता सही नहीं है। मैं तो बहुत सरल काम करता हूं। मैं तो कोई भी पत्थर उठा लेता हूं और इस पत्थर में यह देखता हूं कि इसमें कौन सा हिस्सा अनावश्यक है। हथौड़ी के माध्यम से छैनी पर चोट करके जितना पत्थर अनावश्यक होता है उसे हटा देता हूं। मूर्ति इसी पत्थर में छिपी होती है वह निकल आती है। माइकल एंजिलों का यह जो चित्रण है यह हम सबके लिए एक आदर्श है। प्रत्येक व्यक्ति में ईश्वर प्रदत्त गुण हैं उन्हें केवल खोजने की और खोज कर बाहर निकालने की आवश्यकता है। और यदि उन पर अनावश्यक दुर्गुण का आवरण पड़ा हुआ है तो उसे हटा देने की आवश्यकता है। ईश्वर की दी हुई प्रतिभा प्रत्येक बालक में

प्रकट होती है और प्रत्येक बालक, एक श्रेष्ठ विद्यार्थी, एक श्रेष्ठ नागरिक बनने की क्षमता रखता है जो कि शिक्षक द्वारा जाग्रत की जाती है।

एक बात और। इस विद्यालय का आदर्श यह है कि विद्या का प्रकाश हमें दूर-दूर तक पहुंचाना है। मैं आपको एक बड़ा रोचक दृश्य दिखाता हूं कि आज जब हमने कार्यक्रम का प्रारंभ किया तो हमने दीप का प्रज्वलन किया। हम दीप की ज्योति में एक चिंगारी का संपर्क करते हैं और दीप प्रज्वलित हो जाता है। दो संदेश इस दीप को प्रज्वलित करते हुए मिलते हैं। एक बात तो मैंने आपसे यह कही कि प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व में प्रतिभा और बुद्धिमत्ता छिपी होती है उन्हें केवल जाग्रत करने की आवश्यकता होती है। ऐसे एक दीपक को प्रज्वलित करते हुए उर्दू के एक शायर ने एक शेर लिखा है। उसने लिखा कि—‘एक चिंगार कहीं से ढूँढ लाओं दोस्तों, इस दिल में तेल में डूबी हुई बाती तो है।’ तेल, घी और रूई से बनी हुई बाती तो पहले से मौजूद है बस एक चिंगारी की आवश्यकता है दीपक प्रज्वलित हो जाएगा। दूसरी बात कि यह दीपक प्रकाश तो सर्वत्र करता है किन्तु इसके नीचे अंधकार होता है। एक अतोकान्त कविता है, एक वार्तालाप है प्रकाश और अंधकार का। ‘अंधकार से आक्रामक प्रकाश बोला— मैं तुझे जीने नहीं दूंगा तेरा अस्तित्व ही मुझे मिटाना है। प्रत्युत्तर में प्रकाश बोला— अब मुझे कहां जाना है आपके चरणों में ही मेरा ठिकाना है।’ हर तरफ का अंधकार मिट जाता है किन्तु प्रकाश के नीचे एक स्थान होता है जहां अंधकार बना रहता है। प्रकाश उसे मिटा नहीं पाता। परन्तु इस विद्यालय का यह उद्देश्य है कि हमें प्रकाश का दीपक लेकर दूर-दूर तक जाना है और अंधकार जहां भी छुपा हुआ है उसे मिटाना है। मैंने जो एक दृश्य आपके समक्ष प्रस्तुत किया इसका समाधान भी है। यदि इस दीपक के निकट एक दूसरे दीपक को प्रज्वलित कर दिया जाए तो इस दीपक के नीचे जो अंधकार है उसका विलोप हो जाएगा। एक दीपक दूसरे दीपक के नीचे का अंधकार मिटाने की क्षमता रखता है। और इसलिए इस शिक्षण संस्थान और इस विद्यालय तथा संजयजी मालपाणी जो उद्देश्य है कि हमें केवल संगमनेर में ही ज्ञान का प्रकाश, चरित्र युक्त शिक्षा का दीपक प्रज्वलित नहीं करना है इसे दूर-दूर तक ले जाना है। इनका यह प्रयास बना रहना चाहिए।

इस विद्यालय के प्रबंधन और शिक्षकों को केवल दो संदेश देना चाहता हूं। आप चारीत्रिक शिक्षा दे रहे हैं यह तो बहुत अच्छी बात है। दो शिक्षाएं प्रत्येक शिक्षण संस्थान को देनी चाहिए। आप यदि इन्हें दे रहे हैं तो बहुत अच्छी बात है और यदि नहीं दे रहे हैं तो मैं आपसे आग्रह करूंगा कि आप इसे शुरू कीजिए। पहली बात, संस्कृत की शिक्षा। मैंने आज अपने वक्तव्य के प्रारंभ में खेद प्रकट करते हुए क्षमा मांगी कि मुझे मराठी बोलनी नहीं आती। इतनी सुंदर भाषा है। हमारे अपने देश की भाषा है। किन्तु मुझे मराठी का ज्ञान नहीं है मैं मराठी समझ सकता हूं पर बोल नहीं सकता। मुझे यही अभाव अपने जीवन के अपनी आयु के इस मुकाम पर आकर होता है कि मैंने अपने जीवन में संस्कृत नहीं सीखी। आज जितना अध्ययन मैं करता हूं और जितना स्वाध्याय मैं करता हूं उन सबसे मैं बार-बार मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचता हूं कि भारत के प्रत्येक नागरिक को संस्कृत अवश्य सीखनी चाहिए। संस्कृत सारी भाषाओं की जननी है। यह आदि भाषा है। इसी से सारी भाषाओं ने जन्म लिया है।

मुझे उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश और प्रधान न्यायाधीश होने के नाते अधिकारिक रूप से अनेक देशों में जाने का अवसर मिला है। विशेष रूप से मैं जापान और जर्मनी का उल्लेख करना चाहूंगा। वहां की यूनिवर्सिटीज और शिक्षण शास्त्रियों से मैंने भेंट की है। उन सब देशों में संस्कृत पढ़ाई जाती है। जापानी गर्व से इस बात का उल्लेख करते हैं कि उन्हें जापानी और संस्कृत भाषा आती है। जर्मन विद्वान से आप पूछिए कि आपको कौन सी भाषाएं आती हैं तो अंग्रेजी उन्हें आती हो या न आती हो वे गर्व से कहते हैं कि उन्हें जर्मन और संस्कृत दोनों आती हैं। ये संस्कृत उन देशों में अपनी महत्ता स्थापित करके प्रचारित-प्रसारित हो रही है। और हमारे देश का जितना ज्ञान संस्कृत के आदि ग्रन्थों में है हमारे वेदों में, पुराणों में और उपनिषदों में है इसमें जो ज्ञान है उसका अर्जन वे लोग कर रहे हैं। अभी एक बहुत अच्छी पुस्तक प्रकाशित हुई है। उसके लेखक से मुझे बहुत निकट से मिलने का और वार्तालाप करने का अवसर मिला। जितने भी आविष्कार किए हैं इन सबका उल्लेख हमारे पुराणों और वैदिक ग्रन्थों में मौजूद है और वहीं से सूत्र लेकर हमारा आज का विज्ञान ये शोध और आविष्कार कर रहा है। ये दुःख की बात है कि हमारा अपना ज्ञान और हमारा अपना विज्ञान हम भूल गए हैं और

विदेशी भाषा को जानने वाले उसका लाभ उठा रहे हैं। एक रोचक आपको बताऊं कि अभी एक विद्वान से पुस्तक लेकर पढ़ रहा था उसमें लिखा है कि हावर्ड यूनिवर्सिटी जो विश्व की सुप्रसिद्ध यूनिवर्सिटी है वहां अकेले कालीदास पर 2,300 ग्रन्थ संस्कृत भाषा में उपलब्ध हैं। और उनके रिसर्च स्कॉलरर्स उनका अध्ययन करते हैं और रिसर्च करते हैं। मुझे नहीं लगता कि पूरे भारतवर्ष में भी यदि मैं ढूंढू तो 2,300 संस्कृत की पुस्तकें कालीदास पर मुझे मिल हिन्दुस्तान में मिल पाएंगी। किन्तु कालीदास जो हमारे अपने हैं और हमारे अपने देश में बैठकर उन्होंने इन ग्रन्थों की रचना की वे ग्रन्थ विदेशों में उपलब्ध हैं हमारे अपने देश में नहीं है। इस पर आप सबको विचार करने की आवश्यकता है। भारतीय विद्वानों ने अब यह बात स्वीकार ली है कि भारतीय संस्कृति की आत्मा संस्कृत है और भारतीय संस्कृति की रक्षा केवल संस्कृत के ज्ञान से हो सकती है। इसलिए यदि हमें अपने देश की संस्कृति से लगाव है और यदि हमारे देश की संस्कृति की हम रक्षा करना चाहते हैं तो इस देश की आत्मा संस्कृत से हमें साक्षात्कार करना होगा। और जितना योगदान मालपानी परिवार ये शिक्षा संस्था और हम सब दे सकते हैं हमें देना चाहिए।

दूसरी बात योगसाधना। प्रत्येक विद्यालय में योग के अध्याय होने चाहिए और योग की शिक्षा दी जानी चाहिए। मैं एक दृष्टान्त का उल्लेख करना चाहता हूं। यह साहित्य का तथ्य है और प्रमाणित तथ्य है और इसलिए पूरे आत्मविश्वास के साथ आपके सामने उल्लेख कर रहा हूं। 1973 में एक विद्वान हैं उनका नाम है ब्रायन जोसेफसन उन्हें नोबल पुरस्कार मिला था। और जिस विषय पर उसे पुरस्कार मिला था इस विषय पर उसने जो शोध किए और जो पुस्तक लिखी है उस पर 1973 में उसे नोबल पुरस्कार मिला था। ये नोबल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिक चौदह घंटे भारतीय पद्धति से यौगिक साधना करता था। एक पत्रकार ने उनसे प्रश्न किया कि – आप तो इतने पहुंचे हुए वैज्ञानिक हैं आपको तो अपना समय प्रयोगशाला में खर्च करना चाहिए। आप चौदह घंटे योगसाधना करते रहते हैं और वो भी भारतीय पद्धति से। आप इतने बड़े विद्वान इस देश के हैं। ब्रायन जोसेफ ने जो उत्तर दिया वो आज तक मेरे मस्तिष्क में घूमता रहता है। उसने कहा कि— विश्व की कोई भी प्रयोगशाला मुझे उस यथार्थ से साक्षात्कार नहीं करा सकती जिस यथार्थ से मेरा साक्षात्कार चौदह घंटे योग के माध्यम से ध्यान साधना करने से होता। योग के माध्यम से

और ध्यान साधना करने से मेरे प्रज्ञा चक्षु खुलते हैं और मुझे जिस यथार्थ से साक्षात्कार होता है वो मैं प्रयोगशाला में नहीं कर पता। यथार्थ से मेरा साक्षात्कार प्रकृति के जो रहस्य हैं इनसे मेरा साक्षात्कार ध्यान साधना से होता है उनको मैं आकर प्रयोगशाला में बैठकर देता हूँ। और इस प्रकार मैंने नोबल पुरस्कार प्राप्त किया है। ये योग साधना हमारी अपनी हैं। हमें इसका महत्व समझना चाहिए और अपने बालकों को योग साधना और ध्यान साधना से उन्हें ब्रायन जोसेफ जैसे नोबल पुरस्कार विजेता बनने की प्रेरणा देनी चाहिए।

मैं विशेषकर संजयजी मालपानी, सुशीलजी महेश्वरी, इनका बहुत-बहुत आभार ज्ञापित करता हूँ कि उन्होंने मुझे संगमनेर के प्रबुद्ध सेवाभावी नागरिक, यहां की आदरणीय देवियां, संज्जनवृंद जो सब अपने आप में आदर्श हैं उनके विषय में मुझे जानकारी दी। और इस सुंदर शिक्षण संस्थान के संबंध में मुझे बताया। मुझे तो यहां से जाते हुए संकोच हो रहा है कि यदि मुझसे कोई पूछेगा कि मैं कहां गया था तो मैं उसे क्या बताऊंगा। इसका कारण यह है कि यहां जो मैंने देखा है, जो मैंने समझा है उसे समझने और जानने के लिए उसे देखना ज़रूरी है। One has to see to believe it। यदि मैं किसी से सिर्फ कहूंगा कि मैं कुछ ऐसा देखकर आया हूँ तो शायद वह मुझ पर विश्वास न करे। मैं तो उससे कहूंगा कि जैसे मैं संगमनेर गया हूँ आप भी जाइए और स्वयं देखकर आइए कि वहां का ये शिक्षण संस्थान, वहां का ये विद्यालय, वहां का प्रांगण और वहां के नागरिक और देवियां कितना सुंदर काम कर रहे हैं और कितना अनुकरणीय आदर्श संगमनेर में हैं हमें उसे सीखना चाहिए, समझना चाहिए और अपने नगर में, अपनी बस्ती में यदि कुछ नया न कर सकें तो इसकी नकल तो कर सकते हैं इसे आदर्श बनाकर इसका अनुकरण करके इसका निर्वाह करना चाहिए। मेरी आप सब से बस इतनी सी प्रार्थना है।

इस आयोजन से आज सबसे ज़्यादा खुशी मेरे हृदय में है परन्तु ये जो हमारा आज का दिन है ये कोई समापन का दिन नहीं है। ये शुरुआत का दिन है। एक उर्दू के शायर ने एक बड़ा अच्छा शेर लिखा है। उसने लिखा है कि— 'मेरी ज़िदगी एक मस्सलसल सफ़र है, जो मंज़िल पर पहुंचे तो मंज़िल बढ़ा दे।' एक मंज़िल पहुंचे तो मंज़िल बढ़ा देते हैं। यात्रा समाप्त नहीं होनी चाहिए। पड़ाव और विश्राम तो इसमें हो

सकते हैं पर यात्रा चलती रहनी चाहिए। यहां आपने जो कुछ किया है यह यात्रा का एक पड़ाव है।

मैं राजेशजी और संजयजी से कह रहा था कि जैसे पी.पी. एस. है और भी शिक्षण संस्थान हैं। इनकी एक श्रृंखला है एक ब्रांड नेम बन गया है। और इन्होंने अपनी एजुकेशन करीकुलम को स्टैंडराइज़ किया है। एक मानक बना दिया है। अपने शिक्षकों को तैयार करते हैं।

मेरी हार्दिक इच्छा है कि ये जो विद्यालय है आपने लॉ कॉलिज खोला बहुत अच्छी बात है। मुझे विश्वास है कि आपका ये लॉ कॉलेज उन्ही आदर्शों पर चलेगा जैसे लॉ कॉलेज पर पहुंचने से पहले की शिक्षा यहां दी जा रही है। आपने जो करिकुलम इस विद्यालय के लिए बनाया है ऐसे करिकुलम को एक मानक रूप दीजिए और कोशिश कीजिए कि जैसी संस्था आपने संगमनेर में बनाई है ऐसी संस्था भारतवर्ष के प्रत्येक गांव में और प्रत्येक शहर में बन सके तब मैं समझूंगा कि आपकी जो यात्रा है उसकी मंज़िल आपको मिली है।

////////////////////////////////////

